

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 17: हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का जन्म

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



वैकुण्ठ के वे दोनों द्वारपाल, एक ब्राह्मण के शाप से गिरकर, अब दिति के गर्भ में प्रविष्ट हो चुके हैं। जब संसार भयंकर अपशकुनों की एक रात्रि से काँप उठता है, तब दो दैत्य-भ्राता जन्म लेते हैं जो क्षणों में पर्वत के समान विशाल हो जाएँगे — और उनमें से एक, गदा हाथ में लिए, स्वयं सागर से भी युद्ध खोजने निकल पड़ेगा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

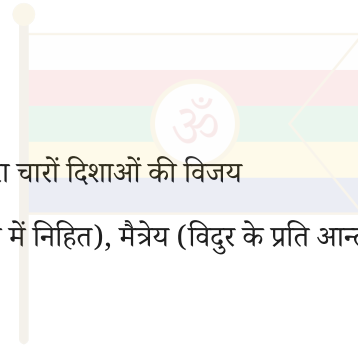
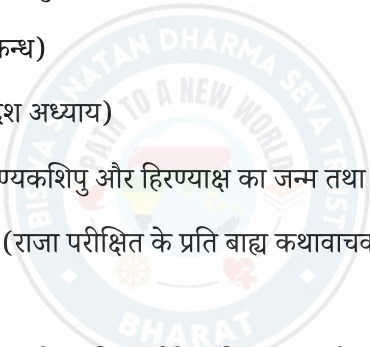
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। तृतीय पुस्तक का सप्तदश अध्याय भागवत के महान् नाटक के एक नए तथा अधिक अन्धकारमय अध्याय का आरम्भ करता है। पिछले अध्याय में विदुर ने उस अकथनीय अन्धकार का रहस्य जाना था जो एक बार तीनों लोकों पर छा गया था: जय और विजय, भगवान् के अपने वैकुण्ठ-द्वारपाल, चार ऋषियों के शाप से — जिन्हें उन्होंने एक बार द्वार पर रोक दिया था — आध्यात्मिक आकाश से गिरकर दैत्यों के रूप में जन्म ले रहे थे — तथा ब्रह्मा ने प्रकट किया था कि यह पतन स्वयं भगवान् की ही इच्छा है, ऐसे कारणों से जो समय आने पर ही स्पष्ट होंगे। अब मैत्रेय कथा को ठीक वहीं से पुनः आरम्भ करते हैं जहाँ से उसे होना चाहिए: जन्म से ही। दिति, पूरे सौ वर्षों के गर्भधारण तथा अपने पुत्रों से देवताओं को होने वाली हानि की गहन चिन्ता के पश्चात्, ऐसी रात्रि के मध्य जुड़वाँ पुत्रों को जन्म देती है जिसमें अपशकुन इतने भयंकर हैं कि सर्वत्र लोग यह विश्वास कर बैठते हैं कि ब्रह्माण्ड का ही अन्त हो रहा है। ये हैं हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष — और यह अध्याय उन्हें केवल उनके प्रारम्भिक पराक्रमों तक ही अनुसरण करता है: उनकी तात्कालिक विशाल वृद्धि, ब्रह्मा से प्राप्त वरदान द्वारा हिरण्यकशिपु की तीनों लोकों पर तीव्र विजय, तथा हिरण्याक्ष की योग्य प्रतिद्वन्द्वी की अशान्त खोज, जो उसे पहले अपने ही भय से रिक्त हुए स्वर्ग में, तथा फिर प्रलय-सागर की गहराइयों में, वरुण के अपने ही नगर के द्वार तक ले जाती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 17 (सप्तदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का जन्म तथा हिरण्याक्ष द्वारा चारों दिशाओं की विजय
- मुख्य वक्ता: श्रीशुक (राजा परीक्षित के प्रति बाह्य कथावाचक, पूरे अध्याय में निहित), मैत्रेय (विदुर के प्रति आन्तरिक कथावाचक), वरुण (प्रचेता)
- अध्याय के भीतर मुख्य श्रोता: विदुर, मैत्रेय की कथा सुनते हुए
- मुख्य स्थल: जुड़वाँ पुत्रों के जन्म के समय कश्यप तथा दिति का आश्रम; हिरण्यकशिपु के त्वरित प्रभुत्व में तीनों लोक; हिरण्याक्ष के आगमन से रिक्त हुआ स्वर्ग; प्रलय-सागर की गहराई तथा वरुण की राजधानी विभावरी
- मुख्य विषय: भयंकर ब्रह्माण्डीय अपशकुनों के मध्य दिति के जुड़वाँ पुत्रों का जन्म; उनकी तात्कालिक पर्वत-समान वृद्धि; कश्यप द्वारा हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का नामकरण; ब्रह्मा के वरदान द्वारा हिरण्यकशिपु की तीनों लोकों पर विजय; हिरण्याक्ष की युद्ध की खोज, भयभीत देवताओं का पलायन, उसका सागर में क्रीड़ा-गोता, तथा वरुण के प्रति उसकी उपहासपूर्ण चुनौती, जिसके उत्तर में वरुण उसे उसके सच्चे तथा अन्तिम प्रतिद्वन्द्वी भगवान् विष्णु की ओर मोड़ देते हैं
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 17, श्लोक 1-31 (गीता प्रेस क्रमांक)
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



वह रात्रि जिसे संसार ने आन्तेम समझ लिया

मैत्रेय का वृत्तान्त राहत के भाव से पुनः आरम्भ होता है: देवता, ब्रह्मा से तीनों लोकों पर छाए अन्धकार का सच्चा कारण सुनकर, अपने भय से मुक्त हो गए तथा स्वर्ग लौट गए। परन्तु यह राहत अल्पकालिक है, क्योंकि कथा अब उसी कारण की ओर मुड़ती है जिसका पूर्वाभास वह अन्धकार दे चुका था। हमें बताया जाता है कि दिति उस क्षण से ही गहन चिन्तित थीं जब उनके पति कश्यप ने पहली बार भविष्यवाणी की थी कि उनका गर्भ क्या लाएगा — एक ऐसा पूर्वाभास कि ये सन्तान देवताओं के लिए संकट उत्पन्न करेंगी। पूरे सौ वर्षों तक उन्हें धारण करने के पश्चात्, उन्होंने अन्ततः उसी आश्रम में जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया।

उनका जन्म अपशकुनों की एक ऐसी विस्तृत तथा सजीव सूची से चिह्नित है जो अध्याय के लगभग आधे भाग को घेरती है, तथा इस पर ठहरना उचित है, क्योंकि भागवत विरले ही केवल वातावरण पर इतना ध्यान देता है। पृथ्वी के अंश पर्वतों सहित काँप उठे; प्रत्येक दिशा मानो अग्नि में जल रही थी; उल्का तथा वज्रपात गिरे; अशुभ धूमकेतु प्रकट हुए। कर्कश, फुफकारती हुई वायुएँ विशाल वृक्षों को उखाड़ते हुए चलीं, आँधी को अपनी सेना तथा धूल के बादलों को अपनी ध्वजा बनाकर। बादलों ने सूर्य, चन्द्र तथा तारों को आवृत कर दिया, तथा यद्यपि उनमें कभी-कभी बिजली चमकती — मानो नीचे के संसार पर हँस रही हो — फिर भी सर्वत्र इतना सघन अन्धकार छा गया कि कुछ भी दिखाई न देता था। सागर स्वयं अपनी ऊँची लहरों के साथ मानो शोक से पीड़ित होकर विलाप करने लगा, उसके ही जीव-जन्तु उथल-पुथल में पड़ गए, जबकि नदियाँ तथा झीलें अशान्त हो उठीं और उनके कमल मुरझा गए। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय बार-बार धुँधले प्रभामण्डल दिखाई दिए; बिना बादलों के भी वज्र की गड़गड़ाहट सुनाई दी, तथा पर्वतों की गुफाओं से रथों के लुढ़कने जैसी ध्वनियाँ निकलने लगीं।

जैसे-जैसे वर्णन आगे बढ़ता है, अपशकुन अधिक विचित्र तथा अधिक निकट होते जाते हैं। गाँवों के भीतर सियारिनें अशुभ रूप से चिल्लाईं, अपने मुख से तीव्र अग्नि उगलते हुए; तथा सियार और उल्लू भी अपनी पुकारों से उनके साथ जुड़ गए। कुत्तों ने अपनी गर्दन ऊँची करके यहाँ-वहाँ ऐसी विभिन्न ध्वनियाँ कीं जो कभी गीत तथा कभी विलाप के समान थीं। तथा मदमत्त गधे झुण्डों में इधर-उधर दौड़े, हे विदुर, अपने कठोर खुरों से पृथ्वी पर प्रहार करते तथा उन्मत्त होकर रेंकते हुए। गधों के रेंकने से भयभीत होकर पक्षी चीखते हुए अपने घोंसलों से उड़ गए, जबकि गोशालाओं तथा वनों में गौएँ तथा पशु भय से मल-मूत्र त्यागने लगे। गौओं ने दूध के स्थान पर रक्त दिया, बादलों ने मवाद बरसाया, देवताओं की मूर्तियाँ अश्रु बहाने लगीं, तथा वृक्ष बिना किसी आँधी के गिर पड़े। मंगल तथा शनि जैसे अशुभ ग्रह बुध, गुरु तथा शुक्र जैसे शुभ ग्रहों तथा अनेक नक्षत्रों से भी अधिक चमकने लगे तथा, वक्री गति लेते हुए, एक-दूसरे से संघर्ष में आ गए। यह सब तथा अन्य ऐसे ही भयंकर अपशकुन देखकर, ब्रह्मा के पुत्रों (सनक तथा उनके भाइयों, जो जय-विजय के पतन तथा दिति के पुत्रों के रूप में उनके आगामी जन्म का रहस्य जानते थे) के अतिरिक्त सभी लोग भय से ग्रसित हो गए, क्योंकि वे इन अपशकुनों का रहस्य नहीं जानते थे, तथा यह सोचने लगे कि ब्रह्माण्ड का प्रलय निकट है।



सौ वर्षों के गर्भधारण के पश्चात् जब दिति जुड़वाँ पुत्रों को जन्म देती हैं, तब अपशकुनों की एक भयंकर रात्रि — काँपती हुई पृथ्वी, हर दिशा में अग्नि, देवताओं की रोती हुई मूर्तियाँ, तथा चिल्लाते हुए सियार — संसार को यह विश्वास दिला देती है कि उसका अन्तिम प्रलय आ गया है (श्लोक 1-15)।

मांस के दो पर्वत, तथा उनके नाम

आगे जो होता है वह भागवत के तात्कालिक, विशाल आकार के सबसे प्रभावशाली चित्रणों में से एक है। दिति के दोनों नवजात दैत्य तुरन्त वह पराक्रम प्रकट करते हैं जो कभी वैकुण्ठ के द्वारपालों के रूप में उनका ही था, तथा उनके इस्पात-सम दृढ़ शरीर बिना विराम के दो विशाल पर्वतों के आकार तक बढ़ जाते हैं। उनके स्वर्ण-मुकुट स्वयं आकाश को चूमते हैं; उनके शरीर मात्र इतने विशाल हैं कि आकाश की सम्पूर्ण दिशाओं को अपने पीछे छिपा लें; प्रत्येक पदचाप से पृथ्वी काँप उठती है; उनकी भुजाएँ, चमकते कड़ों से सुशोभित, ऐसी कमरों के दोनों ओर लटकती हैं जो इतनी विशाल करधनियों से बँधी हैं कि उनकी छाया मात्र सूर्य को आच्छादित कर देती है।

उनका नामकरण उनके पिता, प्रजापति कश्यप, पर निर्भर करता है — तथा यह नामकरण एक छोटा किन्तु महत्वपूर्ण रहस्य लिए हुए है जिसे गीता प्रेस प्राचीन टीकाकार श्रीधर स्वामी की एक टिप्पणी में सुरक्षित रखता है। जुड़वाँ भाइयों में से, जो पहले अपनी माता के गर्भ में प्रविष्ट हुआ था — मानो कश्यप के अपने ही शरीर से दूसरे से पहले उतरा हो — संसार में हिरण्यकशिपु, “जिसका आसन स्वर्ण का है,” के नाम से जाना जाता है। दूसरा, जिसे दिति ने वास्तव में पहले जन्म दिया, हिरण्याक्ष, “स्वर्ण-नेत्र वाला,” कहलाता है। श्रीधर स्वामी इस प्रतीत होने वाली पहली को एक प्राचीन गर्भ-विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा उद्धृत करके समझाते हैं: जुड़वाँ बच्चे तब गर्भ धारण करते हैं जब पुरुष-वीर्य क्रमिक दो बूँदों में गर्भाशय में प्रवेश करता है, फिर भी माता उन्हें उस क्रम के विपरीत क्रम में जन्म देती है जिस क्रम में उनका गर्भाधान हुआ — जो पहले गर्भ धारण हुआ वह बाद में जन्म लेता है, तथा जो बाद में गर्भ धारण हुआ वह पहले जन्म लेता है। यह एक छोटी, लगभग तकनीकी टिप्पणी है, परन्तु यह उस सावधानी की विशेषता है जिसके साथ भागवत के परम्परागत टीकाकार सदैव इसके सबसे संक्षिप्त श्लोकों पर भी ध्यान देते रहे हैं।



दिति के नवजात जुड़वाँ पुत्र तत्काल दो पर्वतों के आकार तक बढ़ जाते हैं, उनके स्वर्ण-मुकुट आकाश को छूते हुए तथा उनकी पदचाप से पृथ्वी काँपती हुई, इससे पहले कि कश्यप उन्हें हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नाम देते हैं (श्लोक 16-18)।

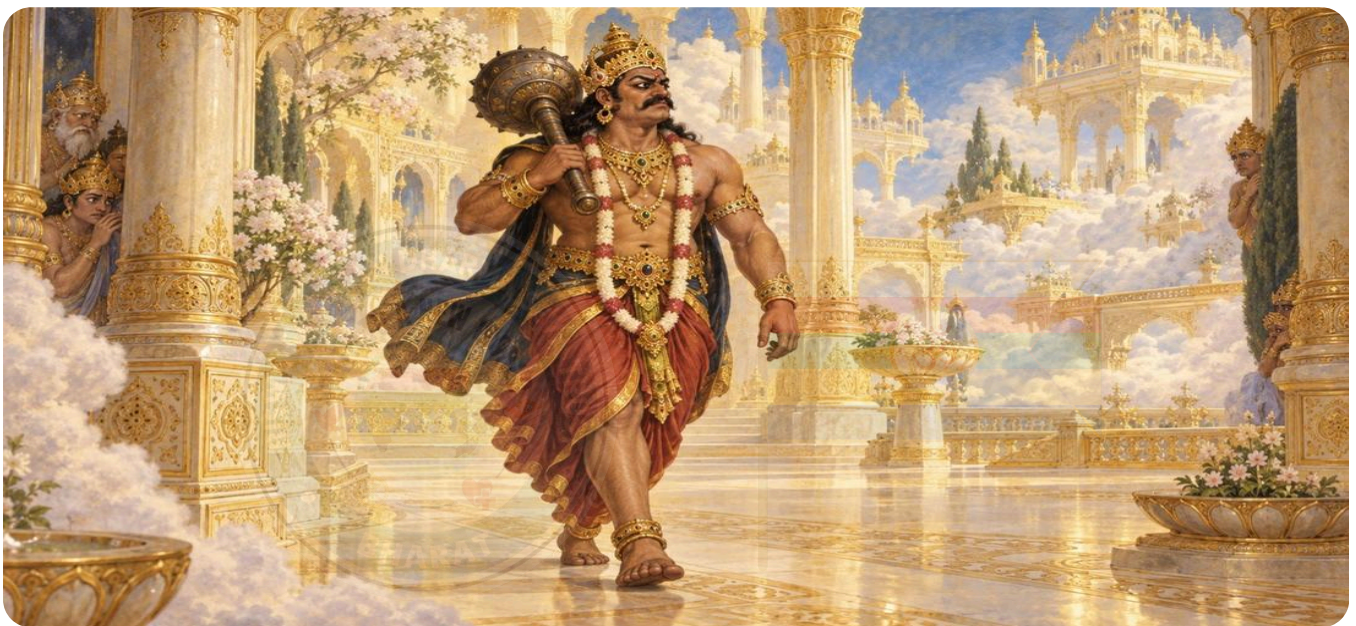
हिरण्यकशिपु की त्वरित विजय

अध्याय हिरण्यकशिपु के अपने प्रारम्भिक जीवन को केवल एक श्लोक देता है, परन्तु यह उस भय को, संक्षेप में, स्थापित करने के लिए पर्याप्त है जिसका वह इस स्कन्ध तथा उससे आगे शेष भाग में प्रतिनिधित्व करेगा: ब्रह्मा से एक ऐसा वरदान प्राप्त करके जो उसे किसी के भी हाथों मृत्यु के भय से मुक्त कर देता है, वह अभिमान से फूल उठता है तथा अपनी ही भुजाओं की शक्ति से तीनों लोकों — पृथ्वी, स्वर्ग, तथा पाताल — को अपने अधीन कर लेता है, इस प्रक्रिया में उनके संरक्षक देवताओं को भी वश में करते हुए। भागवत हिरण्यकशिपु की कथा को एक बाद के स्कन्ध में कहीं अधिक विस्तार से पुनः लेगा; यहाँ, यह एकल श्लोक उसे, अजेयता से पूर्णतः सुसज्जित, अध्याय के वास्तविक विषय के पीछे एक मँडराती उपस्थिति के रूप में स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

इस एकल श्लोक के भीतर एक गहरी योजना अर्ध-छिपी हुई है, तथा कथा आगे बढ़ने से पहले इस पर रुकना उचित है। हिरण्यकशिपु का वरदान वास्तविक अमरत्व प्रदान नहीं करता — कोई भी वरदान, चाहे उसका दाता कितना ही महान् क्यों न हो, किसी भी देहधारी जीव को जन्म, जरा, रोग तथा मृत्यु के नियमों से ऊपर नहीं उठा सकता — यह केवल तीनों लोकों में किसी के भी हाथों मृत्यु से निर्भयता प्रदान करता है (श्लोक 19), तथा शीघ्र ही यही सीमित अजेयता हिरण्याक्ष को भी प्रदान की जाएगी (श्लोक 22)। यह कोई ऐसी कमी नहीं जिसे दैत्यों ने चतुराई से ढूँढ़ निकाला हो; यह स्वयं भगवान् की अपनी व्यवस्था है। उनकी पराजय के प्रत्येक सामान्य मार्ग को पहले ही बन्द करके, विधाता यह पहले से सुनिश्चित कर देता है कि कोई देवता, ऋषि, अथवा इस संसार का कोई अस्त्र इनके आरम्भ किए गए इस विनाश-चक्र को समाप्त करने में समर्थ न हो — कि केवल भगवान् स्वयं, अपनी इच्छा से चुने गए रूप में प्रकट होकर, इनके शासन का अन्त कर सकें। वरुण अध्याय के अन्त से पहले इस व्यवस्था को स्पष्ट रूप से प्रकट करेंगे (श्लोक 31): भगवान् दुष्टों का संहार करने तथा साधुओं पर अपनी कृपा दर्शाने के लिए ही अपने रूप धारण करते हैं — एक ही सुविचारित कार्य द्वारा दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

हिरण्याक्ष युद्ध की खोज में निकलता है

वह वास्तविक विषय हिरण्याक्ष है, तथा अध्याय अब इस पात्र के शुद्ध शारीरिक दुस्साहस के लिए स्पष्ट आनन्द के साथ उसका अनुसरण करता है। उसका प्रिय छोटा भाई — क्योंकि यहाँ हिरण्याक्ष को ही हिरण्यकशिपु को सदैव प्रसन्न करने का प्रयत्न करने वाला तथा युद्ध का अत्यन्त प्रेमी बताया गया है — स्वयं स्वर्ग की ओर, गदा हाथ में लेकर, युद्ध के योग्य प्रतिद्वन्द्वी की खोज में निकल पड़ता है। उसका स्वभाव, ग्रन्थ कहता है, प्रतिरोध करना कठिन है; चलते समय उसके पैरों में स्वर्ण-नूपुर बजते हैं, उसके गले में एक माला है, तथा उसकी विशाल गदा लगभग सहजता से उसके एक कन्धे पर टिकी है। अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्ति से, तथा उस वरदान से जो उसे किसी भी दिशा से मृत्यु के भय से मुक्त कर देता है, फूला हुआ, तथा किसी भी अधिकार से पूर्णतः अनियन्त्रित, उसका मात्र दर्शन स्वर्ग को देवताओं से रिक्त करने के लिए पर्याप्त है। इन्द्र तथा अन्य देवता, हमें बताया जाता है, उसे देखते ही छिप जाते हैं — जैसे सर्प गरुड़ के भय से छिप जाते हैं — जिससे हिरण्याक्ष को यह पाकर कि इन्द्र तथा अन्य देवता, जो अपनी ही शक्ति के मद में डूबे हुए थे, कहीं नहीं मिल रहे, ऊँची गर्जना करनी पड़ती है।



गदा हाथ में लिए तथा युद्ध की खोज में, हिरण्याक्ष स्वर्ग में प्रवेश करता है — और उसे रिक्त पाता है, देवता उसके आगमन के भय से छिप गए हैं, जैसे सर्प गरुड़ से छिपते हैं (श्लोक 20-23)।

स्वर्ग में युद्ध से वंचित, हिरण्याक्ष अपनी अशान्त ऊर्जा को अन्यत्र मोड़ता है, तथा यहीं अध्याय अपना सबसे स्मरणीय मोड़ लेता है। मदमत्त गजराज की भाँति केवल क्रीड़ा की खोज में, वह गहरे तथा भयंकर गर्जते सागर में गोता लगा देता है — किसी रणनीतिक उद्देश्य से नहीं, ग्रन्थ सावधानीपूर्वक स्पष्ट करता है, अपितु केवल मनोरंजन के लिए। वरुण के जलचर सैनिक-दल उसके सागर में प्रवेश करते ही, बिना किसी प्रहार के, केवल उसकी शोभा से भयभीत होकर, दूर तक भाग जाते हैं। अनेक वर्षों तक उन गहराइयों में विचरण करते हुए, वह अपनी लौह-गदा से बार-बार वायु-चालित विशाल लहरों पर प्रहार करता है, तथा अन्ततः वरुण की राजधानी विभावरी, जल के स्वामी तथा पाताल — दैत्यों का निवास — के संरक्षक की नगरी, तक पहुँच जाता है।



स्वर्ग में कोई प्रतिद्वन्द्वी न पाकर, हिरण्याक्ष केवल क्रीड़ा के लिए प्रलय-सागर में गोता लगाता है, वर्षों तक अपनी लौह-गदा से उसकी विशाल लहरों पर प्रहार करते हुए, अन्ततः वरुण के नगर विभावरी तक पहुँचता है (श्लोक 24-26)।

वरुण का उपहास, तथा मृत्यु की भविष्यवाणी

आगे हिरण्याक्ष जो करता है वह उसके चरित्र के पूर्ण, निरंकुश अहंकार को प्रकट करता है। वरुण तक पहुँचकर, वह उन्हें समकक्ष के रूप में चुनौती नहीं देता अपितु उनके चरणों में एक अतिरंजित, उपहासपूर्ण मुद्रा में गिर पड़ता है — यह वास्तविक सम्मान का कार्य नहीं अपितु एक नीच, तुच्छ व्यक्ति की मुद्रा है — तथा, मुस्कराते हुए, माँग करता है: “हे परम प्रभु, मुझे युद्ध दीजिए!” वह इसके पश्चात् ऐसी बातें कहता है जो ऊपर से चापलूसी की भाँति लगती हैं परन्तु शुद्ध उपहास का कार्य करती हैं: वरुण को स्मरण कराते हुए कि वे एक सम्पूर्ण लोक के संरक्षक तथा विस्तृत ख्याति के शासक हैं, जिन्होंने अनेक अहंकारी योद्धाओं का मान चूर्ण किया है, तथा जिन्होंने एक बार, संसार के समस्त ऋषियों तथा दानवों को जीतकर, राजसूय यज्ञ किया था — निश्चय ही, यह निहितार्थ है कि, ऐसा शक्तिशाली प्रभु एक साधारण युद्ध की माँग को अस्वीकार नहीं कर सकता।

वरुण, इस प्रकार असीम अहंकार वाले एक शत्रु द्वारा निरर्थक उपहासित होकर, अपने भीतर वास्तव में क्रोध उठता हुआ अनुभव करते हैं — भागवत यह ढोंग नहीं करता कि उसके वीर पात्र पाषाण के बने हों — परन्तु वे उस क्रोध को अपने कार्य से नहीं अपितु अपने ही विवेक की शक्ति से नियन्त्रित करते हैं। उनका उत्तर एक ऐसे खतरनाक संघर्ष को, न तो युद्ध करके न ही भागकर, पुनर्निर्देशित करने की उत्कृष्ट कला है। वे हिरण्याक्ष से स्पष्ट कहते हैं कि वे स्वयं युद्ध के लिए बहुत वृद्ध हो चुके हैं तथा ऐसे कार्यों को त्याग चुके हैं। परन्तु वे केवल अस्वीकार ही नहीं करते; वे इसके स्थान पर कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ प्रस्तुत करते हैं। “आपके समान युद्ध-कुशल को युद्ध में सन्तुष्ट कर सके, ऐसा उस परम प्राचीन पुरुष के सिवा और कोई मुझे दिखाई नहीं देता,” वे कहते हैं। वे दैत्य को, दूसरे शब्दों में, स्वयं भगवान् विष्णु की ओर मोड़ देते हैं — वह एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी, वरुण कहते हैं, जिनकी प्रशंसा हिरण्याक्ष जैसे वीर भी करते हैं।

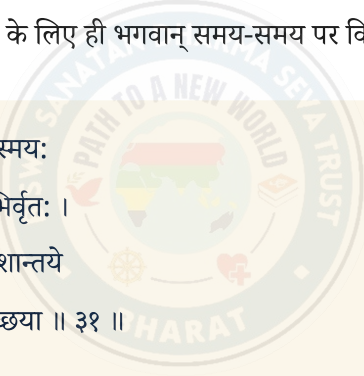
पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्
यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।
आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहि तं
मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥ ३० ॥

*paśyāmi nānyaṁ puruṣāt purātanād yaḥ saṁyuge tvāṁ raṇa-mārga-kovidam ārādhayiṣyaty
asurarṣabhehi taṁ manasvino yaṁ gṛṇate bhavādṛśāḥ*

अर्थ: “हे दैत्यों के प्रमुख, मैं उस सबसे प्राचीन पुरुष के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं देखता, जो युद्ध-कला में आपके समान निपुण किसी को युद्ध में समुचित सन्तुष्टि दे सके — उन्हीं के पास जाइए, जिनकी प्रशंसा आपके ही समान दृढ़-चित्त वीर भी करते हैं।” (स्कन्ध 3, अध्याय 17, श्लोक 30)

वरुण के हिरण्याक्ष के प्रति अन्तिम वचन, अपनी सौम्य सतह के नीचे, एक स्पष्ट तथा चौंकाने वाली भविष्यवाणी लिए हुए हैं। उस प्राचीन वीर तक पहुँचने पर, वे कहते हैं, हिरण्याक्ष का अभिमान तत्काल विलीन हो जाएगा, तथा वह रणभूमि पर — ग्रन्थ जिसे विशेष रूप से “शाश्वत निद्रा” कहता है — कुत्तों से घिरा हुआ लेट जाएगा। यह ठीक इसलिए है, वरुण स्पष्ट करते हैं, कि दुराचारियों को नष्ट करने तथा सज्जनों पर अपनी कृपा प्रदर्शित करने के लिए ही भगवान् समय-समय पर विभिन्न रूप धारण करते हैं।

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः
शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ।
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये
रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥



*taṁ vīram ārād abhipadya vismayaḥ śayiṣyase vīra-śaye śvabhir vṛtaḥ yas tvad-vidhānām
asatāṁ prasāntaye rūpāṇi dhatte sad-anugrahecchayā*

अर्थ: “उस वीर के समीप पहुँचकर, आपका अभिमान विलीन हो जाएगा, तथा आप वीर-शय्या पर, कुत्तों से घिरे हुए, लेट जाएँगे — क्योंकि आप जैसे दुराचारियों को दूर करके शान्ति स्थापित करने तथा सज्जनों पर कृपा दर्शाने के लिए ही वे अपने विभिन्न रूप धारण करते हैं।” (स्कन्ध 3, अध्याय 17, श्लोक 31)

अध्याय ठीक वहीं समाप्त हो जाता है, उस संघर्ष की दहलीज़ पर जिसकी ओर वह निर्माण कर रहा था — हिरण्याक्ष अब, उसी प्रभु द्वारा जिसका उसने उपहास करने आया था, उस मुठभेड़ की ओर इंगित किया जा चुका है जिसका परिणाम इस शृंखला का पूर्ववर्ती अध्याय (स्कन्ध 3, अध्याय 13) पहले ही दिखा चुका है: भगवान् का वराह-अवतार, तथा प्रलय-जल में उनके दाँतों पर दैत्य की मृत्यु।



अपने ही चरणों में उपहासित होकर, वरुण अपने उठते हुए क्रोध को वश में रखते हैं तथा, स्वयं हिरण्याक्ष से युद्ध करने के बजाय, अहंकारी दैत्य को भगवान् विष्णु की ओर मोड़ देते हैं — शान्त गम्भीरता से भविष्यवाणी करते हुए कि दैत्य का अभिमान वहीं, रणभूमि पर, समाप्त हो जाएगा (श्लोक 27-31)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. ब्रह्माण्डीय विक्षोभ प्रायः आने वाली परीक्षा की सूचना उससे पहले ही दे देता है जब वह परीक्षा दिखाई भी नहीं देती। जुड़वाँ पुत्रों के जन्म को चिह्नित करने वाली अपशकुनों की विस्तृत सूची — भूकम्प, रोती हुई देवमूर्तियाँ, दूध के स्थान पर रक्त — यह शिक्षा देती है कि ब्रह्माण्ड स्वयं विपत्ति के आगमन को उससे बहुत पहले ही दर्ज कर लेता है जब उसके मानवीय तथा दिव्य निवासी उसका कारण जान भी सकें (श्लोक 3-14)।
2. संयम-रहित शक्ति शीघ्र ही सबके लिए, स्वयं उसके धारक सहित, संकट बन जाती है। हिरण्यकशिपु का वरदान-प्राप्त निर्भयता तथा हिरण्याक्ष की वरदान-प्राप्त अजेयता, दोनों लगभग तत्काल विजय तथा हिंसा की ओर ले जाते हैं — यह स्मरण कराते हुए कि विनम्रता से रहित शक्ति विरले ही अपने मूल उद्देश्य तक सीमित रहती है (श्लोक 19, 22)।
3. भय, यहाँ तक कि देवताओं में भी, स्वयं में कोई विफलता नहीं है — परन्तु न ही यह कथा का अन्त है। देवता हिरण्याक्ष से ठीक वैसे ही छिपते हैं जैसे सर्प गरुड़ से छिपते हैं; ग्रन्थ इसके लिए उन्हें लज्जित नहीं करता, परन्तु उन्हें बिना किसी उपाय के भी नहीं छोड़ता, क्योंकि कहीं और पहले से ही एक बड़ा निर्णय व्यवस्थित किया जा रहा है (श्लोक 22)।
4. सच्ची शक्ति में एक अयोग्य युद्ध को अस्वीकार करने की बुद्धिमत्ता भी सम्मिलित है। वरुण, उपहासित तथा उत्तेजित होकर भी, वास्तविक क्रोध अनुभव करते हैं फिर भी उसे अहंकार के बजाय विवेक से नियन्त्रित करते हैं, बिना कभी दुर्बल प्रतीत हुए व्यक्तिगत युद्ध से इनकार करते हुए — संयम को स्वयं शक्ति के एक रूप के रूप में प्रस्तुत करते हुए (श्लोक 29)।
5. प्रत्येक शत्रु, चाहे वह कितना ही अजेय प्रतीत हो, अन्ततः केवल भगवान् के प्रति ही उत्तरदायी है। हिरण्याक्ष का पुनर्निर्देशन कोई टालमटोल नहीं अपितु ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का एक कथन है: केवल वही “सबसे प्राचीन पुरुष” ही दैत्य के अभिमान से मिल सकते हैं तथा अन्ततः उसे समाप्त कर सकते हैं (श्लोक 30)।

6. दिव्य रूप केवल शक्ति प्रदर्शित करने के लिए नहीं, अपितु संतुलन पुनः स्थापित करने के लिए विशेष रूप से प्रकट होते हैं। वरुण के अन्तिम वचन वही स्पष्ट करते हैं जिसकी पुष्टि सम्पूर्ण वराह-प्रसंग बाद में करता है: भगवान् अपने विभिन्न रूप ठीक दुराचारियों को नष्ट करने तथा सज्जनों को कृपा प्रदान करने के लिए धारण करते हैं — दोनों उद्देश्य अविभाज्य हैं (श्लोक 31)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक शान्त परन्तु सशक्त बात है — यह अपने सबसे भयंकर पात्र को क्षणभर के लिए भी अनुत्तरित नहीं छोड़ता। हिरण्याक्ष स्वर्ग में विचरण करता है तथा अपनी मात्र उपस्थिति से उसे रिक्त कर देता है; वह उस सागर में उतरता है जो पूर्व अध्याय में पृथ्वी को निगलने जितना विशाल था तथा उसे एक मात्र क्रीड़ास्थल मानता है; वह उस सागर के स्वामी का ही सामने से उपहास करता है। तथापि, इस प्रदर्शन की चरम सीमा पर, उससे मिलने वाला कोई अधिक शक्तिशाली योद्धा नहीं अपितु एक वृद्ध तथा थका हुआ देवता है जिसने केवल स्वयं को सिद्ध करने की इच्छा त्याग दी है — तथा यह उसी देवता का संयम है, न कि कोई बल-प्रदर्शन, जो दैत्य के वास्तविक विनाश को गति देता है। वरुण को हिरण्याक्ष को पराजित करने की आवश्यकता नहीं; उन्हें केवल सत्यनिष्ठा से उस ओर संकेत करना है जो उसे पराजित करेगा। यहाँ एक शिक्षा है जो इस एक प्रसंग से बहुत आगे तक पहुँचती है: किसी युद्ध के उचित परिमाण को पहचानना — यह जानना कि कौन से संघर्ष वास्तव में आपके अपने हाथों से लड़े जाने के हैं, तथा कौन से आपकी अपनी शक्ति से बड़ी किसी शक्ति के हैं — स्वयं में विजय का एक रूप है, युद्ध से अधिक शान्त परन्तु कम सम्पूर्ण नहीं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब आप स्वयं को किसी ऐसे संघर्ष की ओर उकसाया, उपहासित, अथवा प्रेरित पाएँ जो किसी वास्तविक उद्देश्य से अधिक आपके अहंकार को सन्तुष्ट करता है, रुकें तथा ईमानदारी से पूछें कि क्या यह वास्तव में आपके ही हाथों से लड़ा जाने वाला युद्ध है। वरुण की भाँति, अपने भीतर वास्तव में उठने वाले क्रोध को अनुभव करने दें — उसका ढोंग से नकार करने में कोई गुण नहीं है — परन्तु उसे कार्य करने के बजाय विवेक से नियन्त्रित करें, तथा विश्वास रखें कि वस्तुओं की गहरी व्यवस्था को यह आवश्यक नहीं कि आप प्रत्येक चुनौती का व्यक्तिगत रूप से उत्तर दें। अपनी प्रतिक्रिया निर्णय करने से पहले, रुकें तथा शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को, जैसे उसने वरुण को स्मरण कराया, आपको स्मरण कराने दें कि प्रत्येक अहंकार का अन्तिम निर्णय अन्ततः केवल भगवान् के ही हाथों में है।

निष्कर्ष

तृतीय पुस्तक का सप्तदश अध्याय दहलीज़ों का अध्याय है: पूर्व अध्याय में वर्णित जय तथा विजय के पतन तथा उन दैत्य-भ्राताओं के रूप में उनके पूर्ण प्राकट्य के बीच की दहलीज़, जो इस स्कन्ध के शेष नाटक को आकार देंगे; ब्रह्माण्डीय अपशकुनों की एक रात्रि तथा उन दो विशाल पात्रों के बीच की दहलीज़ जिनका उन अपशकुनों ने पूर्वाभास दिया था; तथा, सबसे तात्कालिक रूप से, वह दहलीज़ जिस पर हिरण्याक्ष अब खड़ा है, वरुण के अपने ही वचनों द्वारा उस मुठभेड़ की ओर इंगित किया गया जिसे यह शृंखला स्कन्ध 3, अध्याय 13 में पहले ही सुना चुकी है। इस अध्याय में कुछ भी सुलझा हुआ नहीं है — हिरण्यकशिपु की विजय अबाध रूप से जारी है, तथा हिरण्याक्ष अभी उस वराह से नहीं मिला है जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा है — तथा सम्भवतः यही इस अध्याय की वास्तविक शिक्षा है: कि भागवत अपने खलनायकों के साथ भी धैर्यवान् है, उनके अभिमान को अपनी पूर्ण सीमा तक बढ़ने देता है इससे पहले कि निर्णय का क्षण अन्ततः, अपने ही समय पर, भगवान् के हाथों आता है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा श्रेय

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, सप्तदश अध्याय, आन्तरिक पृष्ठ 211–214।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशांसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सार के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका की प्रतिलिपि नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता या समर्थन निहित नहीं है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-17-birth-hiranyakasipu-hiranyaksa-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट